जंगनामा गुरु गोबिंदसिंह

सम्पादक

डॉ० जयभगवान गोयल

H
294.66
An 54 J

प्रकाशक

H 294.66
An 54 J

ब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

अणीरायकृत

जंगनामा गुरु गोबिंदसिंह

धर्मयोद्धा गुरु गोबिन्दसिंह जी के जीवन पर आधारित

वीरकाव्य

सम्पादक

डॉ० जयभगवान गोयल

रीडर, हिन्दी-विभाग

पंजाब विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर प्रादेशिक केन्द्र,

रोहतक ।

प्रकाशक

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

प्रथम संस्करण, १,०००

Library IIAS, Shimla
H 294.66 An 54 J
00076612

मूल्य २-०० (दो रुपये)

मुद्रक :
टी० फिलिप,
मैनेजर,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय प्रेस,
कुरुक्षेत्र ।

भूमिका

मध्ययुग में यवन-शासन के अन्याय एवं अत्याचार तथा उनकी धार्मिक कट्टरता एवं असहिष्णुता के विरुद्ध सारे देश में एक सुदृढ़, सशक्त एवं संगठित भक्ति-परक सांस्कृतिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसे पंजाब में अग्रसर करने का श्रेय सिक्खों के आदि गुरु नानक-देव तथा उनके उत्तराधिकारी गुरुओं को है। मूलत: सिक्ख मत भारतीय संस्कृति के गतिशील रूप का ही एक जीवन्त अंग है, तथापि इस युग में प्रचलित अन्य भक्ति-सम्प्रदायों से उसमें कुछ विशिष्टताएं हैं। इसमें जिस लोकतंत्रीय-तत्व एवं सामाजिक समता, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा वीर-भावना के दर्शन होते हैं, वह उस रूप में कदाचित् अन्य सम्प्रदायों में उपलब्ध नहीं होते। अन्याय और अत्याचार के प्रति विरोधात्मक स्वर आदि नानक की वाणी में भी मुखरित है। परवर्ती गुरुओं में यह भावना क्रमश: विकसित होती गई और गुरु हरिगोविन्द के वीर-आचरण में इसके क्रियात्मक रूप के स्पष्ट दर्शन होते हैं। ऐसा कहा जाता है कि वे दो तलवारें धारण किया करते थे, एक अमीरी की दूसरी फकीरी की। अर्थात् उन्होंने गुरु नानक द्वारा प्रवर्तित आध्यात्मिक धारा को भी प्रवाहमान रखा और साथ ही अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध शक्ति का भी प्रयोग किया। सिक्खमत की इस वीर-प्रवृत्ति का चरम उत्कर्ष एवं फलागम 'खालसा' की स्थापना में हुआ। अकबर की धर्म-सहिष्णुता एवं उदारता की नीति औरंगज़ेब के समय में धर्म-असहिष्णुता, धर्मान्धता एवं कट्टरता में परिवर्तित हो रही थी। निर्बल और असहाय हिन्दू-जनता उसके अन्याय एवं अत्याचारों से पीड़ित और क्षुब्ध थी। हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया जाता था, उनकी देव-मूर्तियों को खंडित किया जाता था, देवालयों के स्थान पर मसजिदें बनवाई जाती थीं और तीर्थ-स्थानों को भ्रष्ट किया जाता था। उसकी इस धार्मिक-नीति के प्रति विरोध प्रकट करते हुए ही नवें गुरु तेग बहादुर ने शांतिपूर्ण ढंग से अपना बलिदान दिया। उनके पश्चात् उनके पुत्र-श्री दशमगुरु गोबिन्दसिंह ने यह अनुभव किया कि स्व-धर्मरक्षा के लिए अब शक्ति का आश्रय लेना अनिवार्य है और इसीलिए उन्होंने उच्च धार्मिक आदर्शों एवं नैतिक आचरण से युक्त खड्ग-धारी पंथ (खालसा) की स्थापना की और तेग (तलवार) की इस प्रकार वंदना करते हुए उसका वरण किया :—

खग खंड विहंड खल दल खंड अति रण मंड बर बंडं।
भुज दंड अखंडं तेज प्रचंडं अमंडं भान प्रभं।
सुख संता करणं दुर्मति हरणं किलविख हरणं अस सरणं।
जै जै जग कारण स्रिसट उवारन मम प्रतिपारन जै तेगं।

(विचित्रनाटक : १)

उनके अनुसार यह तेग ही दुष्टों का विनाश और संतों का उद्धार करने वाली है। गुरु गोविन्दसिंह ने अकाल-पुरुष का भी दुष्ट-विनाशक, असुर-संहारक एवं संतरक्षक के रूप में स्मरण किया है, इसलिए उनके लिए तेग भी अकाल-पुरुष स्वरूपा है। अकाल-पुरुष की उन्होंने सर्व-लोह, असिपाणि, खड्गपाणि, असिकेतु, अस्त्रपाणं, शस्त्रपाणं आदि के रूप में भी वंदना की है। अस्त्र-शस्त्रों को ब्रह्ममय मानते हुए उन्होंने कहा :—

तुमी गुरज तुम ही गदा तुम ही तीर तुफंग।
दास जान मोरी सदा रच्छ करो सरवंग।

(शस्त्रनाममाला : १३)

दशमगुरु का जीवन, व्यक्तित्व एवं काव्य इस वीर भावना से आद्यान्त ओत-प्रोत हैं। 'चण्डी चरित्र' में अकाल-पुरुष से वे जो वर-मांगते हैं, वह उनके वीरोत्साह का अभिव्यंजक है। यथा :—

देह सिवा वर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूं न टरो।
न डरो अरि सो जब जाइ लरो निसचै कर अपनी जीत करो।
अरु सिख हौं आपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरो।
जब आव की अउध निदान बने अत ही रन में तब जूझ मरो।

'कृष्णावतार' यद्यपि अवतार-कथा है, परन्तु उसमें भी कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना व्यक्त नहीं की गई, वरन् धर्म-युद्ध की ही आकांक्षा प्रकट की गई है—

दसम कथा भागोत की भाषा करि बनाई।
अवर बासना नाहि प्रभ धर्म-जुद्ध की चाई।

(कृष्णावतार : २४९१)

दशमग्रन्थ का अधिक भाग वीर-भावना से ही आन्दोलित है। जहां 'विचित्रनाटक' में गुरुजी अपनी युद्ध-कथाओं के ओजस्वी वर्णन से अपने अनुयायियों में धर्म-युद्ध का उत्साह उत्पन्न करते हैं, वहां 'चौबीस अवतार' तथा 'चण्डी-चरित्र' आदि में पौराणिक कथाओं के द्वारा भी युद्धोत्साह उत्तेजित करने का प्रयत्न किया गया है। भक्तिपरक इन अवतार-कथाओं को वीर-काव्यों का रूप दिया गया है और अवतारों को असुर-संहारक एवं संत-रक्षक रूप में चित्रत-किया गया है। इन पर गीता की 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतम्। धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। ४।८।' उक्ति चरितार्थ होती है, यद्यपि अवतारवाद का कवि ने स्पष्ट रूप से खंडन किया है।

हिन्दी साहित्य में कृष्ण का लीलामय तथा रसेश्वर रूप ही कवियों को ग्राह्य रहा है, जिसके आश्रय से उनकी अनेक मनमोहक, रास-रसपूर्ण रसिक

क्रीड़ाओं का वर्णन किया गया है। 'कृष्णावतार' (दशमग्रंथ) में यद्यपि कृष्ण की बाल एवं किशोर-लीलाओं तथा गोपियों के विरह आदि का भी वर्णन किया गया है तथापि अधिक बल उनके कर्म-वीर एवं धर्म-रक्षक योद्धा रूप को चित्रित करने पर ही दिया गया है। इस प्रबन्ध के २४९२ छन्दों में एक हज़ार से ऊपर छन्द कृष्ण के युद्धों से सम्बन्धित हैं। जरासंध, शिशुपाल आदि के साथ कृष्ण के युद्धों का अत्यन्त विशद, ओजस्वी एवं सजीव चित्रण किया गया है, जिनमें कृष्ण एक यशस्वी एवं साहसी योद्धा के रूप में सामने आते हैं। जरासंध की ११ अक्षौहिणी सेना से भयभीत होकर जब सभी यादव उसका मुकाबला करने से इंकार कर देते हैं, तो श्री कृष्ण की यह उक्ति कि "चाहे सभी लोग उनका साथ छोड़ कर चले जाएं वे बलराम को साथ लेकर दोनों भाई शत्रु की समस्त सेना का संहार कर विजय प्राप्त करेंगे," उन्हें एक कर्म-वीर एवं राष्ट्र-नायक के रूप में प्रस्तुत करती है[1]। जिस युग में यह काव्य-ग्रन्थ लिखा गया, उस समय ऐसे ही निर्भीक, धीर, साहसी एवं दृढ़-निश्चय युग-पुरुष की आवश्यकता थी। सम्भवत: हिन्दी साहित्य में यह पहला और अकेला ऐसा प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें कृष्ण को युद्ध-वीर रूप में चित्रित किया गया है, परन्तु हमें खेद है कि यह रचना समीक्षकों द्वारा अभी तक सर्वथा उपेक्षित ही रही है।

'दशमग्रन्थ' की इन वीर-रसात्मक रचनाओं में योद्धाओं के साहस, उत्साह, शौर्य्य-प्रदर्शन, रणोल्लास आदि का ओजस्वी चित्रण हुआ है और वीरता का ऐसा उच्च-आदर्श प्रस्तुत किया गया है कि उसे पढ़ कर कायर भी तेजस्वी योद्धा बन सकता है और मुर्दों में भी नई जान पड़ जाती है। 'चण्डी चरित्र' में उस रचना के उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए कहा भी गया है कि "सुनै सूम सोफी लरे जुद्ध गाढै।" 'दशमग्रन्थ' में वीरता के आदर्श की व्यंजना इस प्रकार की गई है:

कहा भयो मम ओर ते सूर हने संग्राम।
लरबो मरबो जीतबो इह सुभटनि के काम।

(कृष्णावतार : २४९१)

'कृष्णावतार' की इस उक्ति से गीता में कृष्ण के इस आह्वान से :—

"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम। तस्मात् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय: — " से अद्भुत साम्य है। वस्तुत: 'दशमग्रन्थ' वीरों के प्रहार-प्रतिहार, वीरों के शौर्य्य-प्रदर्शन, साहसपूर्ण गर्वोक्तियों एवं वीरोचित

---

१. यौं हरिजू पुन बोलि उठियो गज को बधिकै जिमि केहरि गाज्यो।
राजन चिंत करो मन मैं हमहूँ दोउ भ्रात सु जाई लरैंगे।
बान कमान क्रिपान गदा गहिकै रन भीतर जुद्ध करैंगे।
हम ऊपर कोप कै आइ हैं ताहि से असत्र सिउ प्रान हरैंगे।

(कृष्णावतार : १०४२-४३)

अनुभावों की चित्रशाला है, परन्तु इस से यह भ्रांति नहीं होनी चाहिए कि गुरु गोबिन्दसिंह किसी पर विजय प्राप्त करके अपना राज्य स्थापित करने के लिए यह आयोजन कर रहे थे या तैमूर, गोरी, गज़नवी, अब्दाली आदि की भांति निरीह जनता पर अत्याचार करके धन-संग्रह करना चाहते थे। उनका शक्ति-संगठन किसी भी धर्म, जाति अथवा देश पर अन्याचार करने के लिए नहीं था-वरन् उन्होंने शक्ति का प्रयोग ही अत्याचार, अन्याय, असत्य और अधर्म के विरुद्ध लड़कर न्याय, धर्म और सत्य की स्थापना के लिए किया था और वह भी विवश होकर। इस भूतल पर अपने आगमन के उद्देश्य को व्यंजित करते हुए वे कहते हैं—

हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुरदेव पठाए।
जहां तहां तुम धरम बिथारो। दुष्ट दोखियनि पकरि पछारो।

(विचित्र नाटक : ७;१६)

धर्म-स्थापन ही उनका मुख्य लक्ष्य था। धर्म से यहां तात्पर्य किसी पंथ या सम्प्रदाय से नहीं है वरन् न्याय और सत्य की स्थापना से है। इतिहासकारों ने उनके योद्धा रूप को तो आंकने का यथोचित प्रयत्न किया है, परन्तु उनका धर्म-वीर रूप अभी तक उनके द्वारा प्रायः उपेक्षित ही रहा है। गुरु गोबिन्दसिंह भी पूर्व-गुरुओं की भांति निरन्तर विभिन्न मत मतान्तरों एवं सम्प्रदायों के आडम्बरयुक्त बाह्याचारों, पाखंडपूर्ण कर्मों, अहंकारयुक्त-साधनाओं, अन्धविश्वासों एवं रुढ़ियों का विरोध और सिक्ख मतानुकूल आध्यात्मिक विचारों का प्रतिपादन करते रहे। 'अकाल उस्तुति', 'जापु साहिब', 'ज्ञान-प्रबोध', 'शब्द हजारा' आदि रचनाओं में उनके इसी रूप के दर्शन होते हैं। यही नहीं, वीर-रसात्मक रचनाओं में भी वे यत्र-तत्र मिथ्याचारों को 'फोकटधर्म' की संज्ञा देकर उनकी व्यर्थता का निरूपण करते हुए अहंकार-त्याग, संत-सेवा, नाम-जाप आदि का उपदेश देते हैं। सिक्ख भक्त कवियों द्वारा रचित 'गुरुविलास' एवं 'गुरु-प्रताप-सूरज' आदि प्रबन्ध-काव्यों से पता चलता है कि जिस समय आनन्दपुर के निकट घमासान युद्ध हो रहा था, उन विकट परिस्थितियों में भी गुरु गोबिन्दसिंह नियमित रूप से अपनी धर्म-चर्या किया करते थे और संगतों को धर्मोपदेश से निहाल करते थे।

वस्तुतः गुरु गोबिन्दसिंह भी पूर्व-गुरुओं की ही भांति शांतिपूर्ण ढंग से सिक्खमत का प्रचार करना चाहते थे, परन्तु जब संकुचित दृष्टि वाले कुछ पहाड़ी राजाओं और धर्म-असहिष्णु यवन-शासकों को उनका यह कार्य भी सहन न हुआ और वे निरन्तर उनके दमन के उपाय सोचने लगे, तो उन्हें भी विवश होकर खड्ग का आश्रय लेना पड़ा। 'ज़फरनामे' में अपनी नीति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने औरंगज़ेब को लिखा था—

चू कार अज़ हमह हीलते दर गुज़शत।
हलाल अस्त बुरदन ब शमशेर दस्त।

अर्थात् जब अन्य सभी साधन विफल हो जाएं तो खड्ग को धारण करना सर्वथा उचित है। 'गीता' में भी इसी नीति का प्रतिपादन किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में भी इसी तथ्य को प्रकट किया है। विश्वामित्र शांतिपूर्वक अपने धार्मिक कृत्य कर रहे थे परन्तु असुर उनके यज्ञों का विध्वंस करने लगे। जब उन्हें समझाने के विश्वामित्र के सभी उपाय विफल हुए तो उन्हें धनुष—बाणधारी राम का आश्रय लेना पड़ा। स्वयं राम ने विवश होकर दुराचारी रावण के विरुद्ध शक्ति का प्रयोग किया था। भारतीय साधना का यह रूप और गुरु गोबिन्दसिंह की उपर्युक्त उक्ति आज की संकटकालीन परिस्थिति में भी हमारी पथ-प्रदर्शक है, जबकि हम अन्यायी एवं कपटी शत्रु की अनीतिपूर्ण चालों से क्षुब्ध हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु गोबिन्दसिंह एक धर्म-प्रवर्त्तक गुरु थे। उन्हें धर्म-रक्षा के पावन-कर्म के लिए ही विवश हो कर योद्धा रूप धारण करना पड़ा। उनका साध्य धर्म-स्थापन था, साधन रूप में ही युद्ध-कार्य अपनाना पड़ा। उनकी युद्ध-वीरता की मूल-प्रेरणा धर्म-वीरता है और इस प्रकार उनके युद्ध धर्म-युद्ध थे और धर्म-युद्ध उनके अनुसार 'अकाल पुरुष' की उपासना का अंग है। उनके अस्त्र-शस्त्र भी न्याय, सत्य एवं साहस के प्रतीक थे। वे सत्य का खड्ग, न्याय का खांडा, नीति की तुफंग एवं नाम का अग्निबाण लेकर धर्म-विजय के मंगल कार्य में प्रवृत्त हुए थे और अपनी संस्कृति एवं धर्म की पताका बुलन्द रखने में उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई थी। धर्म-विजय से यहां यह अभिप्राय नहीं है कि वे किसी अन्य धर्म के विरोधी थे और उस धर्म का नाश करके अपना धर्म फैलाना चाहते थे। गुरु गोबिन्दसिंह का किसी भी मत, धर्म अथवा सम्प्रदाय से कोई विरोध नहीं था। उनका विरोध था धर्मान्धता, अन्याय, अत्याचार, पाखंड, आडम्बर एवं मिथ्याहंकार से और उनका विरोध उन्होंने डट कर किया। वे जाति—पांति, संकुचित मत-वाद, वर्ग-भेद आदि के कट्टर विरोधी एवं मानववादी धर्म के प्रवर्त्तक थे। वे भारतीय संस्कृति के उन्नायक और रक्षक थे और उन्होंने भारत की गतिशील संस्कृति में नए अध्यायों का उद्घाटन किया। उस युग में सांस्कृतिक एकता ही राष्ट्रीय एकता की प्रतीक थी और संस्कृति की रक्षा की भावना ही राष्ट्रीयता की परिचायक थी। इस दृष्टि से सिक्ख मत के अन्तिम प्रतिष्ठित गुरु श्री गोबिन्दसिंह जी केवल धर्म-योद्धा ही नहीं थे, वे एक राष्ट्र-नायक भी थे। वे स्वयं एक उत्कृष्ट कवि थे और कवियों का सम्मान करते थे। यवन-शासन एवं संस्कृति के विरुद्ध उन्होंने जिस सांस्कृतिक एवं राजनैतिक विद्रोहात्मक आन्दोलन का सूत्रपात किया था उसे उत्तेजित करने के लिए उन्होंने काव्य-शक्ति का भी पूरा उपयोग किया। अपने अनुयायियों को धर्म-युद्ध के लिए उत्साहित करने के लिए स्वयं उन्होंने ओजपूर्ण वीर-काव्य लिखे और अपने आश्रित कवियों को भी ऐसे काव्य लिखने के लिए प्रेरणा दी। उनके आश्रय में कोई ५२ कवि विद्यमान थे।

सेनापति ने 'गुरु-शोभा' नाम का एक उत्कृष्ट लघु प्रबन्ध काव्य लिखा जिसमें गुरु-जी के जीवन की साहसिक घटनाओं का अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है। इसी प्रकार 'अणीराय' ने 'जंगनामा श्री गुरु गोबिन्दसिंह जी' की रचना की।

'अणीराय' के जीवन के सम्बन्ध में अभी तक विशेष तथ्य प्रकाश में नहीं आ पाए। उनकी रचना से इतना ही ज्ञात होता है कि उन्हें गुरु जी ने नग, स्वर्ण एवं आभूषण आदि देकर सम्मानित किया था। इस तथ्य से सम्बन्धित छंद इस प्रकार है—

अणीराइ गुरु से मिले दीनी ताहि असीस।
आउ कह्यो मुख आपने बहुर करी बखसीस।
नग कंचन भूखन बहुर, दीने सतिगुर तेह।
नामा हुकम लिखाइ कै, दीनो सरस सनेह।

(जंगनामा)

यह जंगनामा गुरु गोबिन्दसिंह के जीवन पर आधारित एक लघु वीर-काव्य हैं, जिसमें ६६ छन्दों में कवि ने उनके एक युद्ध का ओजस्वी चित्रण किया है। कथानक इस प्रकार है:—

'औरंगजेब ने शासनारूढ़ होने पर हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार करने आरम्भ कर दिए। उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाने लगा और उनके देव-मंदिरों को गिरवाया जाने लगा। उनकी पुकार पर उसे दण्ड देने के लिए अकाल-पुरुष के आदेश से गुरु गोबिन्दसिंह ने सोढी वंश में अवतार धारण किया।[१] उन्होंने उसका विनाश करने के लिए अस्त्र-शस्त्रधारी खालसा की स्थापना की। उनसे भयभीत होकर पहाड़ी राजाओं ने बादशाह के पास एक पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि अब तू अपने शासन की संभाल कर नहीं तो शीघ्र ही खालसा तेरे तख्तोताज को संभाल लेगा। इस समय अबदुल्लाखां नाम के एक चुगलखोर दरबारी ने बादशाह को बताया कि गुरु गोबिन्दसिंह एक नये पंथ का प्रचार कर रहे हैं, इस लिए उन्हें देश में नहीं रखना चाहिए। उसके तथा कुछ अन्य उमरावों के कहने से बादशाह ने अजीमखां को शाही सेना लेकर गुरु जी पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। जब अजीमखां की सेना सतलुज के किनारे पहुंची तब गुरु जी ने उसका डट कर मुकाबला किया। अजीमखां ने अपनी सारी शक्ति उस स्थान पर लगा दी, जहां गुरु जी खड़े हुए थे। घमासान युद्ध हुआ जिसमें

---

१. तखते बैठ अनीति को, सुने न चित अकुलाइ।
ताको करता दिनन के, किउ न लगे फल आइ। ६।
मुसलमान हिन्दू करे, जु देउ ढहावै नित्त।
फरिआद लगी दरगाह मैं, करता धरे न चित्त। ७।
हुकम हुओ गोविन्द को, उतर्यो अवनी जाइ।
कुढल करम औरंग करे, ताको देहु सजाइ। ८।

हिम्मतसिंह, दलेलसिंह, मुहकमसिंह, विचित्रसिंह आदि ने अद्भुत वीरता का परिचय दिया । शत्रु द्वारा छोड़े गए एक मदमस्त हाथी का भी विचित्रसिंह एक वार में वध कर देता है । गुरु जी ने अजीमखां को ललकारा और बड़ी शूरवीरता का प्रदर्शन करते हुए उसका संहार कर दिया । उसके मरने पर उसकी सेना अधीर होकर भाग खड़ी हुई ।" यहीं इस रचना के कथानक का अन्त हो जाता है । अन्तिम कुछ पउड़ी छन्द पंजाबी भाषा में हैं , जिनमें कवि ने गुरु जी के शौर्य्य एवं साहस की प्रशंसा की है ।

'जंगनामा' वस्तुत: फारसी-काव्य-रूप है । इसमें कथानक का अंश बहुत क्षीण रहता है । किसी एक युद्ध के प्रहार-प्रतिप्रहार के चित्रण पर बल दिया जाता है । इस रचना में भी गुरु गोबिन्दसिंह के केवल एक ही युद्ध का वर्णन किया गया है । न तो उनके जीवन से सम्बन्धित अन्य घटनाओं का वर्णन है, न ही 'गुरु-शोभा' की भांति उनके अन्य युद्धों का चित्रण किया गया है । यह शुद्ध रूप में एक 'युद्ध-काव्य' है । गुरु जी के जिस युद्ध का वर्णन इसमें किया गया है, वह ऐतिहासिक घटना है अथवा नहीं, यह विचारणीय है । इस रचना में कुछ ऐसी घटनायें अवश्य हैं जो इतिहास से मेल नहीं खातीं । पहाड़ी राजाओं द्वारा औरंगज़ेब को यह पत्र लिखा जाना कि तुम्हें अभी से सावधान हो जाना चाहिए अन्यथा खालसा मुगलों से राज्य हथिया लेगा[१] ऐसा ही प्रसंग है । 'गुरु विलास' (सुक्खासिंह) तथा 'गुरु प्रताप सूरज' (सन्तोखसिंह) में ऐसी किसी घटना का उल्लेख नहीं है । द्वार तोड़ने के लिये हाथी छोड़े जाने का उल्लेख भी पहाड़ी राजाओं के युद्ध में हुआ है । यह रचना गुरुजी के समकालीन कवि की है । इसलिए इसका अपना ऐतिहासिक महत्त्व है । इस प्रसंग पर अधिक खोज करने की आवश्यकता है । हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह एक साहित्यिक कृति है, इतिहास ग्रन्थ नहीं, जिसमें कवि कल्पना के लिये सर्वदा स्थान बना रहता है । इसलिये यदि चरित्र-नायक के महत्व स्थापन के लिए कवि ने किसी ऐसे प्रसंग की उद्भावना कर भी ली हो, तो इससे न उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध होती है न रचनाकाल । इस प्रसंग से हिन्दुओं की तत्कालीन राजनैतिक आकांक्षाओं तथा कवि की राष्ट्रीय—स्वातन्त्र्य भावना भी प्रकट होती है ।

यह एक लघु रचना है फिर भी इसमें लेखक का उद्देश्य 'गुरु-शोभा'(सेनापति) से अधिक स्पष्ट है । गुरु 'गोबिन्दसिंह' ने मुगलों के जिन अनीतिपूर्ण अत्याचारों की प्रतिक्रिया स्वरूप उनसे युद्ध किये, उसका भी इस ग्रन्थ में स्पष्ट उल्लेख किया गया है । इसलिये 'गुरु शोभा' की भांति किसी भ्रांति के लिये यहां कोई स्थान नहीं रह जाता, क्योंकि 'गुरु शोभा' में गुरु जी के युद्धों के ऐसे कारणों का निर्देशन नहीं किया गया है । कवि ने कई स्थानों पर गुरु जी को हिन्दुओं के

१. प्राचीन जंगनामा पृ० १८ अशोक ।

सम्मान का रक्षक, हिन्दूपति तथा हिन्दू-सुलतान कह कर सम्बोधित किया है[1] और उनके अनुयायियों को भी धर्म-भावना से प्रेरित होकर ही इस धर्म-युद्ध में सहर्ष संलग्न दिखाया है। वे धन की इच्छा से लड़ते नहीं दिखाये गये। इस प्रकार इस युद्ध को मुगलों की अनीति, अत्याचार एवं धर्मान्धता के विरुद्ध जागृत हिन्दू-चेतना के विद्रोह के रूप में प्रस्तुत किया गया है और गुरु गोबिन्दसिंह को धर्म-योद्धा के रूप में जो ईश इच्छा की पूर्ति के लिए ही अवतरित हैं। इस उद्देश्य से युक्त होने के कारण इस रचना का महत्व बहुत बढ़ जाता है। वस्तुतः, इस रचना में राष्ट्रीय-भावना एवं युग-चेतना का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है।

यह एक विचित्र संयोग की बात है कि जिस समय दक्षिण में हिन्दूपति शिवा जी हिन्दुओं की रक्षार्थ धर्मान्ध औरंगज़ेब से लड़ रहे थे, उसी समय पंजाब-केसरी गुरु गोबिन्दसिंह भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए पठानों तथा मुगलों से लोहा ले रहे थे। उधर शिवा जी के दरबार में महाकवि भूषण उनके शौर्य के यशोगान से सम्बन्धित वीरदर्प-पूर्ण कवित्तों से मराठों को उत्साहित कर रहे थे तो इधर गुरु गोबिन्दसिंह के दरबार में सेनापति तथा अणीराय गुरु गोबिन्दसिंह की वीरता का यशोगान करके अपनी ओजपूर्ण वाणी से सिक्खों को उत्तेजित कर रहे थे। दोनों के आश्रयदाता प्रतिष्ठित राष्ट्र-नायक थे और भूषण तथा अणीराय दोनों की वाणी में अद्भुत ओज और शक्ति थी। दोनों ने ही अपने अपने आश्रयदाताओं की वीरता और साहस की प्रशंसा ओजस्वी एवं सशक्त भाषा में की है। अन्तर केवल इतना है कि भूषण ने मुक्तक शैली को अपनाया और अपने चरित्र-नायक के शौर्य के स्तवन लिखे हैं, जबकि अणीराय ने प्रबन्ध शैली को अपनाया है और गुरु जी के शौर्य की प्रशंसा के अतिरिक्त युद्ध-कथा का भी वर्णन किया है।

जिस प्रकार भूषण ने शिवा जी के शौर्य के आतंक का वर्णन किया है उसी प्रकार अणीराय ने भी गोबिन्दसिंह की वीरता की धाक का चित्रण किया है। उसके अनुसार गोविन्दसिंह की धाक सुन कर शत्रुओं के कलेजे काँप उठते हैं। उनके तेज के त्रास से वे तड़पने लगते हैं, उनसे लोहा लेने की अपेक्षा सन्यास ग्रहण कर लेना सुखकर समझते हैं। इधर उधर भटकते हुए वे पुराने पत्तों के समान प्रतीत होते हैं। यथा :—

बान कपि ध्वज भीम भुजान, क्रिपानसु मानस को मरदाने।
मार कै मीर अधीर किये नित यों डरपैं कवि राइ बखाने।
स्री गुरु गोबिन्दसिंह चढैं, अरि के सुनके हियरे धहिराने।
तेज के त्रास ते यौं तरफैं थरके थिरिआ ज्यों पारद पाने। ३।

---

१. हिन्दुपति गुरु आप सिंह गोबिन्द है। पृ० २१
धनुष चन्द्र खंडा धरै हिंन्दूपति सुलतान।
सौढ वंश अवतार हो गोविन्दसिंह बलवान। पृ० १८ प्राचीन जंगनामे।

२. पृ० १७ प्राचीन जंगनामे—अशोक।

युद्ध कथा वर्णन :—

अणीराय ने युद्ध-कथा के विभिन्न अंगों का सर्वांगीण चित्रण किया है। युद्ध के कारण एवं पृष्ठभूमि, शत्रु सेना के प्रस्थान, गुरु पक्ष की तैय्यारी तथा शत्रु का मुकाबला करने के लिए निकलना, आक्रमण, योद्धाओं के जूझने एवं शौर्य-प्रदर्शन तथा युद्ध भूमि के दृश्यों के अतिरिक्त गुरु जी की विजय आदि का भी वर्णन किया गया है।

सेना प्रस्थान :—

सेना प्रस्थान क समय घन घटा के समान गरजने वाले हाथियों; विभिन्न रंगों तथा विविध नसलों के अनेक प्रकार की ज़ीनों एवं पट्टों से विभूषित ऊँचे डील डौल के अश्वों; तीर, तुपक, गोला, गुरज, नेजा, बर्छी आदि अस्त्र-शस्त्रों से सन्नद्ध, इन्द्रधनुष के समान ध्वजाओं को फहराती हुई सेना तथा सेना के आतंक का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है: -

कूच कियो अजीम, सरजै भान मैं,
डर डुल्ले दिग्पाल, चाल असमान मैं।...।
सैयद चले पठान मुगल कई लक्ख हैं।
चले जाहिं सनमुख काल सभ भक्ख हैं। २०।
आप घटा अंकुश छटा बग दंतन की पांति।
मद पानी वानी गरज्ज घन गज़ एकै भान्ति। २४।

सेना-प्रस्थान को कवि ने घन घटा के रूपक में भी प्रस्तुत किया। सेना के मद-मस्त हाथियों को धराधर, उन के दांतों को बुगले, गंडमद को पानी, अंकुश को बिजली, उनके वर्ण को कज्जल-गिरि, सिन्दूर से रंगी शुण्ड को सांझ-ललाई के समय गिरिराज के समान बताया है। ऐसे[1] सादृश्यों से सेना का स्थूल एवं भयावह रूप सजीव हो जाता है।

चडि चलयो जुसिंह गोबिंद संग सैना सबल।
जन पच्छम घनघोर उठ्यो पावस प्रबल।
मत मतंग उतंग धुजां फरहर्रहिं इव।
धुरवा धावत लिये इन्द्र को धनुख सिव।
फिर धुरवां सेधंर धाए धीरज धराधर यथा।
कोर बांध गिर जाए, कीने बराबर।
बग पँत दँत दरसात बादल मेह को।
चुए गंड मद पानी भारी देह को।
धाए मेघ जु डंबर अंबर से सरस।
भई धुदँ रज रुंद सूर झांप्यो दरस।

१-पृ० २०-१६ प्राचीन जंगनामे।

अर्कम जडत जडाउ, दिपैं तह अत भला।
जन घटा छटा आकाश जु चमकै चंचला।
कज्जल गिर से वरणों वरण वनाई वर।
मारैं सुंड फुंकार जु पारावारि पर।
जब सुँडाहल सजै पूर संधूर रुच।
सांझ ललाई मांझ किधों गिरराज उच। २६।

युद्ध वर्णन :—

शूरवीरों के जूझने, उनके घोर संग्राम, प्रहार-प्रतिहार, क्षतविक्षत होकर गिरने आदि का भी कवि ने सजीव एवं यथार्थ चित्रण किया है। कुछ उदाहरण देखिये:—

मची मार भारी दुहूं ओर ऐसी।
भई भीर कुरखेत के खेत जैसी।
छूटे तोप बन्दूक घुरं नाल गोला।
परे ऊख के पूख मैं वज्र ओला।
चलैं तान कमान सौं तीर तिक्खे।
मनो भूमि भारत्थ पारत्थ पिक्खें।
किते बाण कुहकंत भुवकंत आवैं।
उडैं आग ज्यों लाग ज्यों नाग धावैं।
कई वीर रन माहिं कर खग्ग झारैं।
कटैं सीस लै ईस समला सवारैं।
करै घाउ पर घाउ खपूआ कटारैं।
मिले अंक जिन संक ज्यों परे प्यारैं। ५८।

द्वन्द्व युद्ध में वीरों के उत्साह एवं ओज का भी वर्णन किया गया है।

शूरवीरों का व्यक्तित्व :—

युद्ध में जूझते वीरों की व्यक्तिगत वीरता, शौर्य प्रदर्शन, धैर्य एवं साहस का भी कवि ने विशद् वर्णन किया है। गुरु गोबिन्दसिंह तथा उनके सैनिकों—हिम्मतसिंह, दलेलसिंह, मुहकमसिंह आदि के पराक्रम की खूब प्रशंसा की गई है।[1]

---

१. मुहकम सिंह की शूरवीर, दृढ़ता, धैर्य एवं साहस का एक उदाहरण देखिए :—

छाड छाड तीरन को मुड़ी है कमान केती,
छुटकै बंदूकैं गोली वानी द्वै दुरत हैं।
मारि मारि बरछी मुरी हैं केती राइ कवि,
बान भबकाइ मुरे भूमि मैं हुरत हैं।
काटि काटि सीस तरवारैं मुरि मिआन परी,
हाथी घोरा मुरे जासों समर जुरत हैं।
लरि लरि मुरैं फेर लरैं परैं रन मांझ,
मुहकम सिंह जू को मुख न मुरत हैं।३६।

गुरु गोबिन्दसिंह की तो ऋतुराज के समान विख्यात तलवार तथा तुरंग की फौज को तोड़ने वाली, मतंगो के मान को मर्दन करने वाली, धरा को विदीर्ण करने वाली, द्वीपों–देशों में प्रसिद्ध, शत्रुओं को अधीर कर देने वाली, प्रचण्ड कृपाण का भी यशोगान किया गया है। ऐसे स्थलों पर वर्णन में भूषण के साथ अद्भुत समानता के दर्शन होते हैं।

एक उदाहरण देखिए :—

तुरंग फौज तोर कै मतंग मान मोर कै,
लरैक रैं अधीर सत्र जत्र पत्र पान को।
जिते समीप को गिनै, क्रिसान कोप ज्यों हनै,
प्रचंड खंड कित्त मुँड तेज पुंज भान को।
घटा छटा बिदारनी, धनी धरा प्रहारनी,
कि काल बिग्राल काल कूट गूड़ बिग्रान त्रान को।
प्रसिद्ध दीप देस मैं पुरी गनेस सेस मैं,
गुरू गोविन्द सिंह की क्रिपान के समान की।३०।

परन्तु भूषण ने केवल अपने आश्रयदाता की वीरता की ही प्रशंसा की है जब कि अणीराय ने शत्रु-पक्ष के योद्धाओं की वीरता की भी प्रशंसा की है। अजीमखां को कवि ने असाधारण शूरवीर के रूप में प्रस्तुत किया है जो कि स्वामिभक्ति एवं तैमूरवंश का गौरव बढ़ाने के लिये युद्ध में प्रवृत्त दिखाया गया है। वस्तुत:, समान बल वाले प्रतिद्वन्द्वी पर विजय दिखाने से चरित्र-नायक के यश की ही अभिवृद्धि होती है।

युद्ध भूमि :—

इस जंगनामे में युद्ध भूमि के भी कुछ सजीव एवं संश्लिष्ट चित्र उपलब्ध होते हैं। ऐसे स्थलों पर कवि ने सादृश्य विधायक बिम्बों के प्रयोग द्वारा दृश्य को अधिक चित्रमय बना दिया है। उदाहरण देखिए :—

गिरै लुत्थ पर लुत्थ जुत्थ जुगुण जहाँ।
करैं घाउ पर घाउ ताउ तमकै तहाँ। ३४।

खड्ग प्रशंसा :—

तेग बली श्री गोविन्द सिंह चठे रण को मन को जुहलासा।
राइ रहै ठहिराइ सु को नर, लाखन मै भुज को भरवासा।
लोह को तेज तै कोद मजेजते धाई परै अरि को मधवासा।
सूकत भौं मुख सूरन के धन थोर को सोर सुनेजु जपासा।

इसी प्रकार गुरु सिक्खों की स्वाभिभक्ति पर भी प्रकाश डाला गया है।

अलंकार :—

युद्ध वर्णनों में अलंकार-सौंदर्य के भी कई स्थानों पर दर्शन होते हैं। उपमा', रूपक आदि के विधान में कवि को विशेष सफलता मिली है। युद्ध को वर्षा के रूपक के रूप में तो प्रकट किया ही गया है। एक रूपक यह और देखिए कितना सुन्दर बन पड़ा है :—

आप घटा अंकुस घटा बगदंतन की पांति,
मद पानी, बानी गरज, घन गज एको भान्ति।

इसी प्रकार उपमाओं की भी कहीं कहीं सुन्दर छटा दिखाई पड़ती है। साम्य-विधान युद्ध के वातावरण एवं उत्साह के मनोवेगों के अनुरूप है और ओज गुण के उत्कर्ष में सहायक हुआ है।

छन्द :—

यह रचना दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय, भुजंगप्रभात, गीआ, चौपाई, तोटक, अडिल, मनहर, पउड़ी आदि छन्दों में लिखी गई है। कवित्त एवं सवैया को पढ़कर तो कहीं कहीं भूषण के कवित्त, सवैया की याद ताजा हो जाती है।

भाषा ब्रज है जो वेगपूर्ण है और ओज सम्पन्न है। अन्तिम छन्दों की भाषा पंजाबी है और बहुत ही चुस्त, वेगपूर्ण एवं ओजस्वी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस लघु आकार की रचना में भी कवि युद्ध का सर्वांगीण, सजीव एवं ओजपूर्ण वर्णन करने में पूर्ण सफल रहा है। युद्ध की भीषणता, तीव्रता एवं वेग को व्यक्त करने के लिये उसने अनुप्रासयुक्त अक्षरों, अनुकरणात्मक-शब्दों, अन्त्यानुप्रास तथा अतिरिक्ततुक का भी प्रयोग किया है। प्रसंगानुकूल छन्द वैविध्य से भी काम लिया गया है।

वस्तुतः राष्ट्रीय-भावना, युग-चेतना एवं वीर-दर्प से पूर्ण यह एक उत्कृष्ट वीर-काव्य है। उद्देश्य की अभिव्यंजना, वीर रस के परिपाक एवं युद्ध वर्णन के ओजस्वी चित्रण में कवि को असाधारण सफलता मिली है। हिन्दी में ऐसे 'जंगनामे' बहुत कम लिखे गए हैं।

—जयभगवान गोयल

रोहतक,
१ जनवरी, १९६७।

जंगनामा गुरु गोबिन्दसिंह

१ੴ सतिगुर प्रसाद

जंग-नामा

स्री गुरु गोबिन्दसिंह जी का लिख्यते

दोहरा :—
अनीराइ गुरु से मिले, दीनी ताहि असीस ।
आउ कह्यो मुख आपने, बहुर करी बखसीस । १ ।
नग कंचन भूषन बहुर, दीने सतिगुरु एह ।
नामा हुकम लिखाइकै, दीनो सरस सनेह । २ ।

सवैया :—
वान कपि ध्वज भीम भुजान, क्रिपान सु मानस को मरदाने ।
मार के मीर अधीर किये, नित यौं डरपैं कविराइ बखाने ।
स्री गुरु गोबिन्द सिंह चढ़ै, अरि के सुनके हियरे धहिराने ।
तेज के त्रास ते यौं तरफैं, थरके थिरिआ ज्यों पारद पाने । ३ ।

कबित्त : –
जीते जिन दच्छन बिचच्छन बनैत बांके,
नादर निपट अति आदर सिपाही को ।
जाके त्रास वैरी बनवास उपहास लैत,
छाडे सुख आस उपहास जाही ताही को ।
जोधा गुरु गोबिन्द उदार आयो 'राइ कवि',
गाहत न बार केई बार अवगाही को ।
एक फौजैं फोर एक ओर एह जोर करैं,
तेरी तरवार है बिरंचि पादसाही को ।
पायो जैत पत्र सत्र पत्र जयो पुराणे भए,
एक उड गए एक पवन उडात है ।
चले सुख फूल सूल उठे उर अरिन के,
चाहत अरिन सों अरिन बिललात है ।
पायो फल प्रगट प्रताप पातसाही को सु,
जोधा गुरु बिंदि रस कीरत चुचात है ।
सूरन की लाज सुख पानप समाज आज,
तेरी तरवार रितुराज ज्यों बिख्यात है ।

दोहरा:— तखते बैठ अनीति को सुने न चित अकुलाइ।
ताको करता दिनन के किउं न लगे फल आइ। ६।
मुसलमान हिन्दू करै जु देउ ढहावै नित्त।
फरिआद लगी दरगाह में करता धरै न चित्त। ७।
हुकम हूओ गोबिन्द को उतरयो अवनी जाइ।
कुटल करम औरंग करै ताको देहु सजाइ। ८।
धनुष चक्र खंडा धरे हिन्दू पति सुलतान।
सोढवंस अवतार हो गोविन्द सिंह बलवान। ९।
लिखे पठाए शाह पै छोडयो सकल समाज।
कछुक दिनन लग खालसा लहै तखत औ ताज। १०।

सोरठा:— सुनी साह यह बात, उतर दियो निरास कछु।
जानै साई जात, जो जानै मोकै मिलै। ११।

दोहरा:— पंथ चलावत जगत मो कही अबदुल्ला खान।
ताको देस न राखीए, सुन साहिब सुलतान। १२।

सोरठा:— खोटी पडी गोविन्द, दियो काढ दरबार ते।
दुर कुटन कमजात, कही बात तब स्याह इह। १३।

दोहरा:— निस दिन चुगली जो करे खां अबदुल्ला नाम।
कही जाइ अउरंग पै यही ताहि को काम। १४।
जो हम मत दुरमत भई, उपज्यो हिये असत्त।
बिनसत लगे न बार तिस, कीजो कहां बडत्त। १५।
चहूं ओर उमराउ मिल, मसलत करैं अनेक।
अपने-अपने पच्छ को, भए आप मैं एक। १६।
तिन के नाम बखानियत, अति जोधा बलवंत।
दल बल बुद्धि विवेक सों, पैज पुरख परचंड। १७।

छप्पय:— जुलफकार खां प्रिथम, पातसाही को मंडन।
कासम कोकलतास, खान पर दलैं बिहंडन।
इबराहिम खां अटल, गंज अलि खां गुन गाढो।
साज़ो साकरखान, हसन अली खां रिस बाढो।
अत हिमतखां तमतेगखां, रज़ा कुलीखां नहि टरे।
सुत सुभट अतुल बखान के, जबरदसत सनमुख लरे। १८।

दोहरा:— सरजे खान अजीम को, हुकम दियो इह साहि।
साजि चमूं चतुरंगनी, चढो जाइ तुम ताहि। १९।

पउडी :— कूच कियो अजीम, सरजै भान मैं ।
डर डुले दिगपाल, चाल असमान मैं ।
सईअद चले पठान, मुगल कई लक्ख हैं ।
चले जाहि सनमुख, काल सभ भक्ख हैं । २० ।

दोहरा: — चढयो चमूँ चतुरंग लै, अति अजीम मुलतान ।
तीर तोप गोला गुरज, अत बरछी बर बान । २१ ।
सतलुज हूँ के घाट पर, कियो ठाट गुर जान ।
पाटनि पहुंचे पैंज कर, को अजीम अग्यान । २२ ।

भुजंगप्रयात छंद—चहूँ ओर दल दिग बाजे नगारे ।
चढे चक्कवै चित गुपतां जु जारे ।
लरैं बाज को ताज को गाज गाजैं ।
खरे लाज को काज को नाहि भाजैं ।
सजे साज कुंभी किये कंभ कारे ।
सिरीं चौर गज गाह घंटा घुमारे ।
दिये सीस संधूर ठाढ़े निसासै ।
सुनै डंक मारू निरातुंक बासै ।
चले कोर बांधे घटा घोर भारी ।
परी छाह छौनी छटा ज्यों उबारी ।
चुएं गंड पानी, महा चंड वानी ।
जुरैं जुध जोधा, नहीं संक मानी ।
चहू ओर ते ओर कोऊ नाहि पावै ।
करी पैंज पूरे, कहां लौं गिनावै । २३ ।

दोहरा:— आप घटा अंकुश छटा, बग दंतन की पांति ।
मद पानी बानी गरज्ज, घन गज एकै भांति । २४ ।

गीआ छंद— तीखे तुरंग अभंग सुंदर अंग अंग अनूप जे ।
अरबी इराकी कच्छ बलखी सजे सुंदर रूप जे ।
काबली कंधारी बेस तुरकी, तेज ताजी बाज ने ।
खुरसान रूम फिरंग सिंधी, पीपरे दल गाज ने ।
नीले हरे संजाब अंबरस बोझ मंगसी मन हरैं ।
संदली अबलक ए सीराजी, अगरबा पर दल तरैं ।
नीले सुरख पीले सितासित, पछ कलिआन सबे सजैं ।
सिरगे समुंद चलाक चौधर, देख सुरपति के लजैं ।
कपूर रोझे काक हसले, फूलवारी से फुलैं ।
पाराबते रजते सुरंगे, थाप बानन ते खुलैं ।

सुरमई सूरे किलक कजरे, मिसत करवुर अत बली ।
खुरखुंद रवि रज रुंद धावत, कोप कटक चला चली ।
जगमगत जीन जराउ पट्टे, पेस बंद बनाउ के ।
पहरे सनाहु बनाइ पाखर, चक्रवे चक चाहु के । २५ ।

दोहरा :— पांच कोस डेरे रहे, छुट्टे तीर जु बीर ।
गडें जाइ अजीम पैं, कहै जु जादु बीर । २६ ।

रास छंद:— चढि चल्यो जु सिंह गुबिंद, संग सैना सबल ।
जन पच्छम घनघोर उठयो पावस प्रबल ।
मत्त मतंग उतंग धुजा फरहरहिं इव ।
धुरवा धावत लिये इंद्र को धनुष सिव ।
फिर धुरवा सेंधर धाए धीरज धराधर ।
कोर बांध गिर जाए कीने बराबर ।
बग पंत दंत दरसाए, बादल मेह के ।
चुए गंड मद पानी भारी देह के ।
छाए मेघ जु डंबर अंबर से सरस ।
भई धुंद रज रुंद, सूर झाप्यो दरस ।
अंकस जडत जडाउ दिपैं तह अत भला ।
जन घटा छटा आकास जु चमकै चंचला ।
जरी बाफ के झुल सूम सकला तके ।
स्री चमर गज घंटा घुरे सुक घाटके ।
कज्जल गिर से बरणों बरण बनाइ बर ।
मारैं मुंड फुंकार जु पारावारि पर ।
जब सुंडाहल सजै पूर संधूर रुच ।
सांझ ललाई मांझ किधों गिरराज उच ।
डर डुले दिगपाल, जलाजल कीच हुइ ।
दुरे दौर दर हाल, बिग्राल बिल बीच हुइ ।
रद फुट्टे बारहि, तलातल त्रिड तुडग ।
धौल धराधर कंपये कूरम किड मुडग ।
अौ मत अम्रित मंतग ब्रिंद बल बाह के ।
को कवि सके सराहि, हिंदूपति नाह के । २६ ।
जीन जराउ बनाइ तुरंगम कोर के ।
चपल भास म्रिग मीन, भान रथ जोर के ।
चंचल चपल चलाक, छबीले सोहने ।
देत बात को बाजी बाजी रोहने ।
उठे जात नभ गौन, भीर भट कौन की ।

नेक सु बागें लेहिं बागें पौन की ।
सात दीप कर भौरी, फिरकी से फिरैं ।
बैनतेय तरु दुरत, दौर मन ते परैं ।
कच्छी स्वच्छ सुजात परेवा पौन है ।
अंग अनूपम रंग सिंध सुत कौन है ।
बरे बार कर मोती, पारद चलाचर ।
देख दौर के दुरे जु, दामिनि दरादर ।
खंजन सरद सुहाए रहें सु बार हैं ।
समर सु मद जन मीन परे वापार हैं ।
हिन्दूपति गुरु आप सिंह गोबिंद हैं ।
जन मघवा चढ्यो गुराक सूर संग ब्रिंद हैं । २७ ।

दोहरा :— लरे दोइ दल दोइ दिस, कोऊअ न नेक सराइ ।
बुद्ध विरुद्ध सुध ना परे, जुरे जुद्ध को आइ । २८ ।

चौपई :— सब के मन मैं यही बिसेखो, दलबल प्रबल अजीमहिं देखो ।
बहुत अमीर भए तिन संगी, सूरबीर जोधा जुर जंगी ।
बुध वचित्र अरु वडो खजाना, रोप्यो खेत धरे बर बाना ।
निस दिन राखे बीन सिपाही, सदी हजारी और पंजाही ।
सभै बनाउ ठीक है याके, होनी हाथ रही कर ताके ।
उत खानी का सब जग जानै, लुतफुल्ला खां संक न मानै ।
अउ अनेक दल बाला साही, फजल अली खां सरस सिपाही ।
नबी कुली खां नहिं मुख मोडे, खां मिहरमंत सार झकोरे ।
मार्यो खेत दुहूँ दिस भारो, दारू दुंद भयो अंधिआंरो ।
सुरज संक दुरो गिरि अंतै, रह्यो न मोहि लोहि बसंतै । २८ ।

सवैया :— तेग बली स्री गोबिंद सिंह, चढ़े रण को मन को जु हुलासा ।
'राइ' रहै ठहिराइ सु को नर, लाखन मैं भुज को भरवासा ।
लोह के तेज ते कोद मजेज तै, धाइ पर अरि को मघवासा ।
सूकत यौं मुख सूरन के, घन घोर को सोर सुने जु जवासा । २९ ।

कवित्त :— तुरंग फौज तोर कै, मतंग मान मोर क,
लरैं करैं अधीर सत्र जत्र पत्र पान कौ ।
जिते समीप को गिनै, क्रिपान कोप ज्यों हनै,
प्रचंड खंड कित्त मुंड तेज पुंज भान को ।
घटा छटा बिदारनी घनी धरा प्रहारनी,
कि काल बिआल काल कूट गूढ बिआन त्रान को ।
प्रसिद्ध दीप देस मैं, पुरी गनेस सेस मैं,

गुरू गोबिंदसिंह की क्रिपान के समान को । ३० ।
जहांसाह जू सों कीनी जहां लौ निकाई हुती,
रूफीउ स्याह उतसाह सौ बढ़ाइकै ।
लरवे को चहूँ ओर घोरी घनो राइ कवि,
उमंड घुमँड आए अति ही रिसाइ कै ।
राज साज को समाज कै कै वीर गाज गाज,
भाजे न वचत या ते चडे चित चाइ कें ।
फौजन की कोरैं मुख तोपन के जोरैं देत,
सार की झकोरैं सु अजीम कोप्यौ आइकै । ३१ ।

तोटक छंद :— इत ए सब सो मनहार करै ।
दल को धन देत निसंक धरैं ।
दु सदी सु सदी औ हजारन को ।
मन मोद बढ्यो सु जुझारन कं ।
गजराज सिंघारत साज तरैं ।
लरवे की कथा नित·ही उचरैं ।
उमंडे चहूं ओर ते बांधि घटा ।
दिह वर एक अनेक ठटा । ३२ ।

अडिल :— बरखत बान बंदूख, तीर तरवार तिह ।
छुटे तोप गज नाल, गरज घुर नाल जिह ।
उठै तुंड बहु मुंड, झुंड झाला झपट ।
चढ़त सूर मुख नूर, कूर काइर दबट । ३३ ।
मच्यो बीर घमसान, कान कीचक भयो ।
खरे खेत जस हेत, ठाठ ठीको ठयो ।
सयद मुगल पठान, सेख राजे लरे ।
एक एक ते सरस पलट पग ना धरे ।
गिरे लुत्थ पर लुत्थ जुत्थ जुग्गण जहां ।
करैं घाउ पर घाउ ताउ तमकै तहां ।
धूम धुंद रवि रुक्यो, झुक्यो चहूं ओर दल ।
जहाँ गुरू गज धुक्यो, मुक्यो अजीम बल । ३४ ।

दोहरा :— दल चारन कारन कहा, बारन छाड्यो भीर ।
मारन मच्यो अजीम ते, मारन आयो बीर । ३५ ।

पउडी :— हिम्मतसिंह दलेलसिंह, गुर आग्याकारी ।
मारी तेग मतंग सिर, ढाही अंबारी ।

मानो पावस बीजली, गिरि परी करारी ।
लंका वास जु पौन पूत, डारी अट्टारी ।
मारी सरजे खान नो जन हर आंख उघारी ।
मंगल गावै जोगणी, पहनि सूही सारी । ३६ ।

दोहरा :— आगे लडत बचित्रसिंह, सुन मुहकमसिंह सूर ।
बारन मारन को चल्यो, मुख पर बरसत नूर । ३७ ।

इदंव छंद :—ठाढो जो सिंह महा रण मैं, करवाइ सो दाहने मंत्र मतायो ।
तुम किह काज रह्यो हठी के, जिह सुक्रित दान को सीस दुरायो ।
यौं सुन आगे उठ्यो उत को, इन देखत ही अति रोस बढायो ।
प्रेरि तुरंत उमंग धस्यो, मुख मारि मतंग को अंग कंपायो । ३८ ।

मनहर छन्दः— छाड छाड तीरन को मुडी हैं कमान केती,
छुटकै बंदूकैं गोली बानी ह्वै दुरत है ।
मारि मारि बरछी मुरी है केती राइ कवि,
बान भवकाइ मुरे भूमि मैं हुरत है ।
काटि काटि सीस तरवारैं मुरी मिम्रान परी,
हाथी घोरा मुरे जासों समर जुरत है ।
लरि लरि मुरैं फेर लरैं परैं रन मांझ,
मुहकमसिंह जू को मुख न मुरत है । ३९ ।

सवैयाः— जासों रहै बलिहार बिलोच, लरी लट छाडि तच्यो तप ताही ।
जासों दवे दल दच्छन के, यह लच्छन जान सबे जु सिराही ।
जासों बिदार बिदारत बारन, यारन मों रिसके जु उमाही ।
काटत रुंडन मुंडन भुंडन, सो तरवार गुरू बरसाही । ४० ।

छपय :— अचल चलत नग हलत, कमठ कलमलत सकल तन ।
गुन गावत गवरेस सेस कवितेस सहस फन ।
हरी अनल दलन दल तहां कहि हिलत चहू ओरन ।
मिटै मवास बिलास ताकत गिरि खोरन ।
चकवै चित्र चमकत चकितु सुकत धाइ पर भुवन बल ।
गहि चडत कटक भै भटक भट जहां गुरू बरछी बिमल । ४१ ।

मनहर :— फौजैं बांधि घटा तावे, छटा चमकत असि,
गरजत गोला गाडे लागी झरी भोर तैं ।
बरखत बान, अवसान भूल जात जहां,
बाजत निसान घन घोर चहूं ओर तैं ।
मघवा धनुष धर धरै बीर रण माझ,
काइर करप्पांने तहां सार की झकोर तैं ।

पेलैं पील बानन धंकेले दै दै गजराज,
मेरे जानैं धुरवा सो छुटैं चहू कोर तैं। ४२।

कबित्त :— कुकवन जानी परै कुहकता मै बान भारी,
घमसान मच्यो आइ चुगता नरेस को।
अतल तलातल चलाचल से गिरिराज,
दल के समाजन ते कांप्यो सीस सेस को।
तीर तरवारन को, बाजी बर बारन को,
पार न लहित बर बारन महेस को।
गज्जन से कर चोटैं, कोटैं बान जोटैं सूर,
यांते मुख गौरजा दुरावत गनेस को। ४३।
धर्यो ही रह्यो खजाना, बांधो रह्यो वीर बाना,
भयो चहूं ओर ते ज्यों ईद का किसाना है।
जूझ परे उमरा ते गज पाछे पेले पाउं,
लागे सनमुख घाउ चित इतराना है।
लोक की लुनाई बिसराई मन मैं न आई,
सांकुरे सहाई जहां पौरष हराना है।
लरत अजीम जहां गुरू ललकार्यो आई,
हैदर की हांक जैसे खह्वर खटाना है। ४४।

सवैया :— तीरन की चहूंटैं चहूं ओर तैं, तान सरासन सों जब छाडे।
बेधत यौं उन को निकस्यो उत पाखर ढाल भई नहीं आडे।
एक लुटे उलटे पलटे इक भाज बचे दुर तापत खाडे।
धाइ लग्यो अरि के उर यौं, मनौ अंत के जाइ निसान से गाडे।४५।

सर कोसन ते बहु रोसन सों, बिसिखी विस से निकसे अनीआरे।
गुन जोर के जोर सों छाडत ही, छिन मैं चल प्रान किये तन न्यारे।
आप गडे उरि बाहर फेंक सु, यों कविता छवि भाउ बिचारे।
पोत कपोत कराइन ते सु मनों, मुख काढ के मांगत चारे। ४६।

कबित्तः—गही कमान कान लौं, हने जु पूंज प्राण लौं,
भजी चमंक संक सैन ह्वै सबे अधीर सौं।
जहां जहां जबै लगै, अछेद छेद को खगै,
सनद्ध बद्ध जुद्ध मैं गिरैं कपोत कीर सौं।
बलाइ सान बीन तै, कनी अनी नवीन कै,
गढै बढै सु लोह कोह सद नद कीर सौं।
रह्यो न तेह देह मैं, लुटे किते जु खेह मैं,
गुरू गोविंदसिंह के छुटे जु तीर बीर सौं।४७।

सवैयाः—वार न पार विथार महा, उमडैं घुमडैं जिम सिंध की ओजैं ।
तोप तिमिंगल कूरम ढाल पै, तीर तरैं धन ज्यों दल सोजैं ।
मीन मुनाक मुखी बरछी चुभकै दल कुंत करे चित कोजैं ।
को समुहाई करैं रण मैं, जब धाई गुरू बर साहि की फौजैं । ४८ ।
मार मची, न संभार रही, दूहूं ओर छुटैं घन ज्यों घन गोलैं,
तानि सरासन तीरे चलैं, बर बाननि सों बहु काइर डोलैं ।
आ गन बीर अजाची भए, तहिं जवुंक गिद्ध महाव्रत खोलैं ।
टुट्टत सीस भुजा उर छुट्टत लुट्टत ज्यों पर पावक होलैं । ४९ ।
लागि जंजाइल साइल जयों तरफैं तन ताइल घाइल घूमैं ।
सूर झुके करवारन सों, कर वारन सों वहु लोटत भूमैं ।
गुरू गोंविद की लाज के काज, भजैं न महारण मैं झुक झूमैं ।
फूल के हारन मांग संधूर दै, हूर किती मिलि पाइन चूमैं । ५० ।

कबित्तः—दारू गोली गज कलैं चलैं मतवारी जैसे,
गनत न राना राउ इहै तेहु ताह की ।
सोहैं किये सौहैं न खटात कोउ 'राइ कवि',
केते सौहैं खात सुध भूल जात राह की ।
सबद गहिर सुनि हहि हिय हहिरात,
ठहिर न सकैं कोऊ देखैं दुख दाहकी ।
लागत अचूकैं हाहा कूकैं उरि हूकैं उठैं,
छुटत बंदूकैं रण ऐसी जहां साह की । ५१ ।

चौपईः—अजीम खान भावी भरमायो । और कछू मन मैं नहीं आयो ।
जो निज हुती सु सेना साजी । खेलैं खेत लाइ सिर बाजी ।
मारैं मुरैं टरैं अब कैसे । पाछै ह्वै आई नित ऐसे ।
तिमर बंस को ओप चढावैं । जाको करता देह सु पावैं ।
रण ते भाजे कहा बडाई । वधे न अउध, घटे ना घटाई ।
आज थके लर के दल दोऊ । बहुर संभार सकै नहीं कोऊ । ५२ ।

छप्पयः—समै पहुती आइ सु तो कहि किउं कर हुटै ।
डोर कहां लग चलै गुडी जो पउन न छुटै ।
नारि कहा सोहिये बिना भरतार सिंगारै ।
सकट कहां लौ चले जहां धीरी सभ हारै ।
बिन खेउट नाउ निबाहु कत, बिन गुन बान चलंत नहि ।
यह प्रगट बात संसार मैं, बिन ठाकुर दल लडत नहि । ५३ ।

दोहराः—प्रान चले तन ना चले, रोप्यो रफी अतेब ।
हाथी साथी छाड कै, साथ न छाड्यो टेब । ५४ ।

छप्पय:—अति अजीप लरि लटयो, भाग बिन लोह पलटयो।
जहां गुरू वर जुद्ध कटक अद्धर धर कटयो।
वहुर जु अउरंग साह, रोस करि राज गवायो।
आइस भेजो लोक सीस, सनमुख होइ नायो।
जह गुरू साह सो बिनै कर, दई वडाई सकल जग।
पावरी करी निस दिन ररैं, धरैं हाथ निज निजहि पग। ५५।

आदल आलम सकल, जोधा जग जानो।
नास होइ तिह वास, रास जिह हुकम न मानो।
परी नाथ चहूं ओर तूं जु नर नाथ भयो भुव।
करी सु जस दिग बिजै, छिनक रावरे चरन छुव।
स्री गोबिंदसिंह जग मैं बली, सुकवि राइ पौरष प्रवल।
जहां मारि सु साहि अजीम को, तखत छत्र दिन दिन अटल। ५६।

भुजंगप्रयात छंद:—कियो पील आगे जहां सार बाजैं।
महां वाहु जोधा खरे खेत गाजैं।
चड्यो धूम बयोमैं, छुट्यो तोप खाना।
पर्यो घोष भूमैं करे कोप खाना।
किते घाइ घूमैं, उठे जात केते।
किते लुत्थ भूलें, परे हैं अचेते।
कियो पैंज गाढी जहांदार आयो।
चले बान बंदूक जोधा रिसायो।
करे मार भारी भयो जुद्ध भारो,
वडो चित्त ज्यौं बित्त है ब्रित्त धारो।
मरे नाहि क्यों ही जहां सूर जंगी।
कियो लाल आंखैं, लिये सूर संगी।
बिना भाव नीको, परे भूम भाई।
मिटै कौन पै जो बिधाता बनाई। ५७।

मची मार भारी दुहूं ओर ऐसी।
भई भीर कुरखेत के खेत जैसी।
छुटे तोप बंदूक घुरं नाल गोला।
परे ऊख के पूख मैं वज्र ओला।
चलैं तान कमान सों तीर तिक्खे।
मनो भूमि भारत्थ पारत्थ पिक्खे।
किते बान कुहकंत भुवकंत आवैं।
उडैं आग ज्यों, लाग ज्यों नाग धावैं।

कई बीर रन माहि कर खग्ग झारैं ।
कटैं सीस लै ईस समला सवारैं ।
हुने हाथ नेजा गहै दीघ चौंधी ।
लगे सतरु के अंग ज्यों बज्र कौंधी ।
करैं घाउ पर घाउ खपूआ कटारैं ।
मिले अंक जिन संक ज्यों परे प्यारैं ।
गिरैं लुत्थ पर लुत्थ बहु जुत्थ ऐसे ।
परे ताल के पाल बहु मग्र जैसे ।
किते नीर बिन मीन ज्यों तरफरावैं ।
किते लोह के छोह पर मोह धावैं ।
कई गिरैं रन माहि कई छोड भागैं ।
कई घोर घाइल कई घूम जागैं ।
कहां ओर ते नाम संख्या बखानौं ।
लिखे जात थोरे कई नाहि जानौं । ५८ ।

दोहरा:—गज काटे घोरे मुए, माणस मरे अनेक ।
कई सहंस्र दल जूझयो, बरणौं कहां बिबेक । ५९ ।

पउडी:— बाँके बनैत मंडैत जोधा, सभै सज्जि सनाहि ।
सिर खोल बकतर जिगै पागी बांधके गज गाहि ।
सूरे सिपाही सरस साचे, बीर खेत खिलार ।
तरवार जमधर तीर बरछा सिपर ले हथिआर ।
बंदूक बान निसान बैरक सीस चमर ढुलंत ।
पैदल घने जुझार आए, को न गने जिह अंत ।
बजंत मारू घोर दुंदभि चलयो अति रिस ठान ।
रज रुंध धुंद अकास छायो गयो लोपत भान ।
तीखे तुरंग मतंग मरदन, पौन तै अगवार ।
दबके दलेर न वेर लावत, स्वामि काज संभार ।
भारथ मच्यो तुव लोक मैं, गुरु देव खांडे सूर ।
सिर ताज सोढी सिंह गोबिंद, जगत साके पूर । ६० ।

दारू भबूका बान छूटे, गरज गोला तोप ।
धर लुट्ट टुट्ट संजोह बकतर, जुट्ट जिरहा टोप ।
इक घाइ घूमैं देखि भूमैं, इक छोडैं प्रान ।
जिह बीर नच्चैं, रुधर रचैं, मचो कीचक खान ।
सर सिल सुहल खिलार खिले इक्क मल्लैं खग्ग ।
गावत मंगल जोगणी जस रह्यो जगमग जग्ग ।

बरसंत केसर कुसम सुन्दर, बरत हैं बर हूर ।
गौरी गनेश महेश आए, डवर सवद अपूर ।
कीनी फते स्री साहिबां, सतिगुरु गरीब निवाज ।
सिर ताज सोढी सिंह गोबिंद, रह्यो जगमग छाज । ६१ ।

पउडी:—

सतिगुर सेवा होइए, तन तान सताने ।
दुख नसे सुख उपजै, भावन मन माने ।
तेग वली गोबिंद सिंह, साचे बलवाने ।
कलजुग साचे सूर तूं नौ खंडी जाने ।
खंडा दान संभारिआ, कुल दिती ओप ।
भेड भजाए सूरमे, कटि बखतर टोप ।
तरवारी ते कैबरां, जित्तो रण रोप ।
स्री गुरु गोबिंद सिंह दा, कौण झल्ले कोप । ६२ ।

घोर दमामे संचरे, तीरे झर लावन ।
खंडा विच्च चमक्कई, वैरी तन तावन ।
बद्दल मारू बर तुरें, भरि जोसीं धावन ।
कडकन गोले सुतर नाल काइर कंपावन ।
अरि घर काल परखीए, घरनी विरलावन ।
चढिआ गुरू गोबिंदसिंह सार संदा सावन । ६३ ।

सत्ते धारां धाईआँ, चढि बडै राजै ।
खेत मचाइआ सूरमे, दल मारू बाजै ।
झंडे नेजे बैरकां, तन पक्खर साजै ।
नारद तुंद बजाइआ, बीर तक्कण खाजै ।
कल नच्ची मुह जुट्टिआ, सुणि काइर भाजै
तेग सुराही सिंह दी, जिन सभै राजै ।
सौहिं होइआ खालसा, जिन गैवर गाजै ।
फते करी स्री साहिबां, जग मैं जस छाजै । ६४ ।

खोटी मसलत धोहि दिल, चढ चले पठाण ।
धाए नाम लिखाइ कै, सजि बडै माण ।
तीरां तेगां गोलिआं, जुट्टे घमसाण ।
अग्गे गुरु गोबिंदसिंह, बल भीम समान ।
मारे खेत खराब कर, घाइर घर दान ।
लगे कैबर कहिर दे, चुग गए चवान ।
खोहन वाल चुडैलीआं, महिलीं कुरलाण ।
ढूंडे हत्थ न आउंदे, रण रुडे पठाण । ६५ ।

खंडे धूहे मिश्रान ते, वैरी बिलखाने ।
जुट्टे दुहूँ मुकाबले, बिज्जूं भरलाने ।
वाहन मुणसां घोडिश्रां, घाइल घुम्माने ।
जुज्भन सौंहे सार दे, दरगह परवाने ।
मुंड मुंडकन मेदनी, एही नेसाने ।
जण माली मिटे बाडीश्रां, खरबूजे काने । ६६ ।

जुट्टे तेज ततारचे, तिक्खे श्रणीश्राले ।
ताणि कमानी छड्डीश्रन, उडि चलन उताले ।
पैगामां ते काणीश्रां, सोहन सूफाले ।
लग्गण मुवसां पाखरां, छड जाहिं निरोल ।
घाइल घुम्मण तडफडी, बैरी बेहाले ।
जण लुट्टण कबूतर काबली, मल्लूकीं पाले । ६७ ।

बंदूकीं भर गोलीश्रां, पल्लीते लाए ।
शोर सुणिश्रा सभ प्रिथवी, बद्दल गरडाए ।
तक तक मारन साऊश्रां, बहुते बिचलाए ।
खेत जिता स्री साहिबां, जग साके पाए ।
बुरजां वांगू ढाहि कर, सभ गरद मिलाए ।
जन दूरों श्राए पाहुने, सुख नींद सुवाए । ६८ ।

पढिश्रा जुध मैं गुरु दा कंम होवन रास ।
नजर मिहर दी जीवीए, पूरे मन श्रास ।
मौज दरिद्र बिदारिश्रा, मंने श्ररदास ।
ऐथे श्रोथे श्रोट तूं तेरा परगास ।
स्री गोबिंदसिंह मनाइए, नित होण हुलास ।
श्रणीराइ जस जंपिश्रा, मेटे जम त्रास । ६९ ।

इति स्री गुरू गोबिंदसिंह जी का जंग-नामा संपूरणमसत सुभमसतु ।

Library IIAS, Shimla
H 294.66 An 54 J
00076612